IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

सामंतीकरण की आर्थिक प्रक्रिया में भूमि अनुदानों का प्रभाव

राजेश कुमार निर्मल
(शोध छात्र)
डा0 बीरेन्द्र मणि त्रिपाठी
(एसोसिएट प्रोफेसर)
ने.ग्रा.भा. मानित वि.वि. प्रयागराज

यह कहा जाता है कि भूमि अनुदान की परम्परा में राज्य को करों से वंचित किया जो राज्य के लिये आत्मघातीय स्थिति थी। जिन परिस्थितियों ने राज्य को ऐसा करने के लिये विवश किया उसे रोम के पतन एवं अरबो के उत्थान के कारण भारतीय व्यापार की असफलता से जोड़ा जाता हैं। चूंकि इस संकट से सिक्कों की अत्यधिक कमी तथा शहरो तथा उद्योग तथा व्यापार का ह्रास हुआ। अतः विकल्प के रूप में भूमि अनुदान की व्यवस्था लागू हुई है। हालांकि भूमि अनुदानों की आलोचनात्मक पुनर्व्यख्या यह–संकेत करती है कि भूमि अनुदान सभी क्षेत्र में राज्य के संसाधनों को कम नही कर रहे थे बल्कि अनेक प्रकार से राज्य के स्रोतों को समृद्धि भी किये हैं। जिन अनुदानों से कर के छूट की घोषणा की गयी उनसे भी राज्य को कर मिलने की व्यवस्था थी, धार्मिक अुनदानों से भी कर लिया जाता था और लौकिक अनुदानों से केन्द्रीय सरकार के कर बंद नही हुये थे।

हमारे पास यह निश्चित करने के लिये पर्याप्त निश्चित प्रमाण नही हैं, कि सामन्ती कर में वृद्धि कृषि विस्तार और कृषि उत्पादन में वृद्धि के कारण है लेकिन इसमें संदेह नही दानभोगियों के उक्त सामन्तीकरण एवं बेदखली से यह प्रक्रिया जुड़ी हुई थी।

ग्यारहवीं शताब्दी तक आते–आते व्यापार के विकास एवं वृष्टि के पतन में कोई कार्य कारण सम्बन्ध नही है क्योंकि अब वृष्टि (बेगार) सिक्को के माध्यम से भी दी जाने लगी थी। इस समय चोल राज्य में व्यापार प्रगति पर था और सिक्के भी पर्याप्त रूप में प्रचलित थे।

श्रम सेवा की सिक्कों में गणना और किसानो की गतिशीलता के नियंत्रण में शिथिलता को व्यापार से जोड़ा जाता है किन्तु इसका सम्बन्ध भूस्वामियों एवं किसानो के दो सामाजिक विभाजनों के संकट और सामन्ती अतिरिक्त–उत्पादन के अधिग्रहण से जोड़ा जा सकता है। बिना उत्पादन में वृद्धि के करो में वृद्धि और शासको का मध्यवर्तियों के बढ़ते अधिकारों ने किसानो की स्वतंत्रता का हनन ही नही किया बल्कि शोषकों एवं किसानो में शत्रुता पैदा की। किसानो से दमनात्मक, करो एवं देयों के विरोध से या तो भूमि से पलायन किया या भिक्षुवृत्ति अपना लिया। कभी–कभी वे सामूहिक रूप से गांव तक छोड़ देते थे। अन्यथा विद्रोह पर उतारू हो जाते थे जिसके उदाहरण हमें राजतरंगिणी आदि साहित्यिक स्त्रोतो से मिलते हैं, जैसे बंगाल के कैवर्तो का विद्रोह, कश्मीर में डामर विद्रोह आदि।

हालांकि मालिको के विरूद्ध किसानों के असंतोष एवं संघर्ष धार्मिक सिद्धान्तों एवं आदर्शों द्वारा शान्त कर दिये गये। वर्ण–धर्म, कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म, स्वर्ग–नरक, व्रत–उपवास, तीर्थ यात्रा आदि के द्वारा विभिन्न वर्गो में समन्वय स्थापित किया गया। सुधारवादी आंदोलनों मुख्यतः, भक्ति एवं तन्त्र के प्रभाव ने सामाजिक एवं धार्मिक समन्वय

करके संघर्ष एवं विरोध को रोका तथा तंत्रवाद ने जनजातीय लोंगो को सामंती समाज में प्रतिष्ठित किया।

सामंती श्रेणी विन्यास का आधार असमान वितरण था चूंकि उसके साथ जाति प्रथा का भी संयोग था, इसलिये इस श्रेणी विन्यास में असन्तोष एवं संघर्ष की संभावनायें बहुत ही जटिल थी। जहां एक ओर सामान्यरूप से उत्पीड़न के कारण किसानों में मध्यवर्तियों के विरूद्ध असंतोष था, वही इन बिचौलियों में भी पारस्परिक द्वेश एवं संघर्ष पाये जाते थे और इन दोनो ही स्तरों पर संघर्ष एवं असंतोष के मूल में आर्थिक एवं राजनीतिक कारण थे। यद्यपि कभी–कभी ये संघर्ष जातीय दृष्टि से भी देखे जाते थे, किन्तु मूलतः ये संघर्ष आर्थिक ही थे।

संदर्भ

1. ओम प्रकाश, अर्ली इण्डियन लैण्ड ग्रान्ट्स एण्ड स्टेट इकोनामी
2. झा, डी0एन0, अध्यक्षीय भाषण भारतीय इतिहास कांग्रेस 1979
3. शर्मा, आर0एस0 इण्डियन फ्युडलिज्म
4. कौशम्बी, डी0डी0, ओरिजन ऑफ फ्युडलिज्म इन कश्मीर 1959।
5. शर्मा, आर0एस0 अर्बन डिके इन इण्डिया।
6. यादव, बी0एन0एस0 सोसाइटी एण्ड कल्चर।
7. शर्मा आर0एस0, पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति
8. चट्टोपाध्याय, बी0डी0 ट्रेड एण्ड अरबन सेन्टर्स इन अर्ली मेडुअल नार्थ इण्डिया।
9. शर्मा, आर0एस0 प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास।
10. सरकार, डी0सी0 क्रियेशन ऑफ रेन्ट–फ्री होलिडंग्स।